श्री सद्गुरु चरणाय नमः

आशय ।

पूजक पूजन से बने, पूज्य बराबर धार ।
पूजा फल पूजा करे, पावें भवोदधि पार ॥

वर्तमान समय में मन्दिरों में पूजा करते समय अनेक प्रकार की आसातनाएं देखने में आती हैं, अतः सुज्ञ बन्धुओं से निवेदन है कि, उपयोग रख कर जैसे बने वैसे आसातना न होने पावे, इस बात पर लक्ष्य रखकर दूसरों को भी समझाने के लिये प्रयत्न करने का अपना कर्त्तव्य समझें । विधिपूर्वक पूजन हो तब साधक अपना साध्य-बिन्दु साधन कर सकता है, नहीं तो जो क्रियाएं की जाती हैं वे घानी के बैल के समान हैं ।

पूजा करने वाले प्रत्येक बन्धु को पूजक, पूज्य और पूजा इस त्रिपुटी पर विचार करना चाहिये । पूजा किस लिए करनी, किस की करनी और किस तरह करनी, इस

विषय पर प्रस्तावना स्वरूप लिखने की आवश्यकता है। यद्यपि द्रव्य और भावपूजा के अनेक प्रकारों का वर्णन अपन जानते हैं तो भी पूजा करने में वास्तविक रहस्य क्या समाया हुआ है, यह बात जहां तक जानने में समझने में न आवे, वहां तक पूजा का यथार्थ लाभ प्राप्त नहीं हो सकता। इस लिए पूजा करने वाले मनुष्य को यह बात अपने लक्ष्य में रखनी चाहिये कि, अपने जिस की पूजा करते हैं, उस के गुणों का समावेश अपने में हो जाय, इसी हेतु से अपन पूजा करते हैं, न कि सांसारिक पौद्गलीक सुख प्राप्त करने की इच्छा से। यदि सांसारिक पौद्गलीक सुख प्राप्त करने की इच्छा से पूजा की जाय तो संसार से पार उतरने के स्थान में अपन भव-भ्रमण में फस जायगे। सांसारिक सुख का तुच्छ और असार समझ कर आत्मिक सुख की तरफ दृष्टि रख, पूजन करने से अपने को पूजा का वास्तविक लाभ प्राप्त हो सकता है।

(२) अब इस विषय पर ध्यान देना उचित है कि पूजा किस की करनी चाहिये। जो पूज्य पुरुष संसार के सर्व मोहक पदार्थों से विरक्त हो वीतराग हुए हैं, ऐसे महापुरुषों की पूजा करना योग्य है और उन्हीं की पूजा

अपने को वीतराग पद की प्राप्ति करा सकती है पर उन की पूजा, अपने अन्त करण में उनपर पूज्य बुद्धि उत्पन्न न हो, वहां तक नहीं हो सकती इस लिए उन पर पूज्य बुद्धि उत्पन्न करने के लिए अपने को उनके चरित्र और उन के गुणों का गहन अभ्यास करने की परमावश्यकता है । ऐसा करने से ही अपने अन्त करण पर उन के गुणों का अटल प्रभाव पड़ता है और अपने में उन के जैसे गुणों का प्रवेश होता है । अत सर्व सज्जनों से नम्र प्रार्थना है कि पूज्य होने के लिए पूज्य महापुरुषों पर पूज्य बुद्धि धारण करके उन की पूजा करनी चाहिए ।

(३) जब जब मैं कई मन्दिरों में जाता तो बहुत आसातनाए मेरे नजर आतीं उस समय मुझे अति खेद उत्पन्न होता पर मन्दिरों के पुजारी एवम् प्रबन्धक महाशयों को सूचना करने पर भी उनका निवारण नहीं होता देखकर मैं चाहता था कि एक छोटीसी पुस्तक इस ढङ्ग से लिखी जाय कि जिस से उन प्रबंधक महाशयों के ज्ञान नेत्र खुल जाय। मैं यह पुस्तक लिखना ही चाहता था कि श्रीमद् परम पूज्य महामुनिराज श्रीश्री १००८ श्री हंस विजय जी महाराज साहब की कृपा से मुझे एक प्रति "जिन भक्ति आदर्श" नामक पुस्तक की

प्राप्ति हुई जो कि गुजराती भाषामें श्रीमान् सेठ कुँवर जी आणन्द जी भावनगर निवासी ने लिखी है। मैंने उपरोक्त पुस्तक को अपनी इच्छानुसार ही जानकर उसको हिंदी भाषा में लिख डालना उचित समझा अत गुजराती लेखक महाशय की आज्ञा प्राप्त करने पर यह पुस्तक तैयार की जाकर मुमुक्षुओं की सेवा में उपस्थित की जाती है।

अन्त में मैं मूल लेखक महाशय का उपकार मानने के साथ २ प्रतापगढ निवासी श्रीमान् सेठ भगवानदासजी के सुपुत्र सेठ लक्ष्मीचन्द्र जी शङ्करलाल जी चन्दनलाल जी घोषा और श्रीमान् शाहा ओंकारलाल जी चिम्मनलालजी पोरवाड जीरन निवासी का भी उपकार मानकर धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता कि जिन्हों ने इस पुस्तक का ढाई ढाई सौ प्रतियां छपवाकर भेट स्वरूप वितीर्ण करने की उदारता दिखाई।

विनीत—

जीरन जिला मन्दसौर
विजयादशमी १९७४वि०

मुन्शी झमकलालरातडिया,
लीगल प्रेक्टिशनर
प्रतापगढ, राजपूताना



जिनभक्ति आदर्श ।

भक्ति के निमित्त होनेवाली आसातनाएं

यह विषय बहुत ही विचारणीय है, उत्तम और भवभीरु प्राणि इससे बहुत ही डरते रहते हैं, परन्तु कुछ तो दीर्घ विचार न करने से, कुछ उपेक्षा भाव रखने से, कुछ बोध की शून्यता से और कुछ उसके विचार को जाग्रत करने वालों की कमी होने के कारण से भक्ति करने की इच्छा होते हुए भी जिन-पूजा आदि धर्मक्रिया करते हुए प्राणि जिनेश्वर की आज्ञा भगरूप एवम् अन्य प्रकार की आसातनाएं करता है। वे आसातनाएं यथामति नीचे लिखने में आती हैं, बुद्धिमान् महाशय इनपर विचार करके जितनी सूचनाएं योग्य मालूम हों, उनको शीघ्र स्वीकार करेंगे, ऐसी आशा है।

१—प्रथम तो श्रावक को केवल जिन पूजा के निमित्त ही प्रतिदिन स्नान करना कहा है, इसके अतिरिक्त नित्य स्नान का निषेध है। जिन पूजा के निमित्त भी परिमित [नापेहुये] जल और जहा नील फूल्न के अन्यत्र सजीवों को विराधना न हो उस रीति से जयणा से नहाना चाहिये। परन्तु खेदका विषय है कि, इसके विरुद्ध ऐसी जगह विशेषत मुम्बई जैसे बड़े शहरों में और अन्यत्र इस प्रकार स नहाते हैं कि, जहा बिलकुल जयणा नहीं पाली जाती। पानी का परिमाण नहीं रखता जाता और अनन्त अनन्तकाय जीवों [नील फूलन] की विराधना होती है, ऐसे ही त्रस जीवों की भी विराधना होती है। ऐसा होने से जिनेश्वर की आज्ञा प्रारम्भ में ही भग होती है यह एक प्रकार की आसातना ही है।

२—नहा कर पीछे पहनने की कमली और उसके बाद पहनने के कपडे ऐसे मैले—गन्दे, दुर्गंधयुक्त और फटे हुये भी होते हैं कि जिनके लिये अच्छी स्थिति वालों को शर्माना चाहिये। एक वर्ष मे भी एक जोडी कपडे की इस कार्य के लिये काम में नहीं लाई जाती! यदि एक एक जोडी कपडे की साल भर में इस कार्य के लिये निकाली जाय तो सामान्य स्थिति वालों को भी इससे कुछ हर्ज नहीं हो सकता। परन्तु कोई कोई सत्पुरुष ही वस्त्र रखते हैं और जो वस्त्र रखने वाले

हैं , वे उन वस्त्रों को स्वच्छ रखने की परवाह नहीं करते। इससे शरीर को नुकसान ही नहीं होता किन्तु परमात्मा का अनादर दर्शित होता है, उसकी भक्ति में खामी दीखती है, यह भी आसातना ही है।

३—जिनेश्वर की द्रव्य पूजा के प्रारम्भ में जलपूजा की जाती है, यह लगभग २ घडी दिन चढा हो, सूर्य का प्रकाश हो गया हो, रात्रि में एकत्र हुये जीव जन्तु पीछे हट गये हों, यदि रह गये हों तो दीख सकते हों, या मयूर पिच्छी से उनका निवारण हो सकता हो तब जल पूजा करना योग्य है। कितनेक स्थानों पर कई वक्त इतनी जल्दी और पूर्वोक्त जयणा पाले बिना ही प्रक्षालन [जलपूजा] किया जाता है कि जिस से जीवदया नहीं हो सकती और तीर्थंकर की आज्ञा भंग होती है। यह भी एक प्रकार की आसातना है और पूजा करने का मुख्य काल दूसरे प्रहर का कहा है यह खास ध्यान में रखने योग्य है।

४—जिनबिम्ब का प्रक्षालन करने का हेतु, व्यतीत हुए यानी गतदिवस की चढी हुई केशर पुष्पादि हों उनको दूर करने का है, उसमें पुष्प सुवासित होने के कारण [जो अनेक त्रस जीवों के स्थान बन जाने का संभव है] उनको पहले ही से

लेकर दूर न डालते हुय अलक भीतर ही रख देते हैं, कि जिसमे उन में रहे हुए त्रस जीवों का विनाश हो जाता है। पहले या बाद में किसी भी समय एक भी फूल प्रक्षाल के जल में नहीं गिरना चाहिय। यह बात खास ध्यान में रखने योग्य है।

५—जिन बिम्ब पर चढी हुई पहले दिन की केशर को **बासी केशर** कहने में आती है, उसको दूर करने के लिय कपडे को भिगोकर काम लेने की आवश्यकता है, उसके स्थान में **वाला कूँची** से इस तरह प्रक्षाल करने में आता है कि जैसे सुनार आभूषण धोता हो! इस में भी सुनार की वाला कूची बालों की बनी हुई होने से सुकोमल होती है और य बालाकूचियां तो सुगंधि वालों की बनी हुई होने से अति कठोर—कर्कश होती हैं, इसमें किसी प्रकार का भी अभी तक सुधार नहीं हुआ। ऐसी वालाकूचियों से प्रभु के सारे शरीर को घिसना, यह एक प्रकार की महान् आशातना है। इसलिये जहा तक बने वहा तक वालाकूचियों का इस्तेमाल नहीं करना चाहिय। यदि जिनबिम्ब के किसी अङ्ग में खड्डे पडे हुए हों और उनमें केशर भरजाती हो तो केवल वहां पर नम्र हाथ से वालाकूची का किंचिमात्र उपयोग करना चाहिए। वाला कूची का निरन्तर उपयोग करने से जिनबिम्ब कितना घिस जाता है। यह उनके शरीर के अमुक स्थल पालेठी पर के

रेश्च और धातु के निम्ब के मुखनासिका आदि व सिद्धचक्र के मङ्गोपाग देखने से प्रत्यक्ष मालूम हो जाता है । वालाकूची बिल्कुल इस्तेमाल न की जाय और कहीं भी केशर भरी रहजाय तो उससे इतनी आसातना नहीं होती जितनी कि वालाकूची करने से होती है । विशेषत विचार तो केशर भरी रहजाने का नहीं पर पानी भरे रह जानेका करना चाहिए कि, जिसमे फ़ील फूलन और मैल भरजाने का सम्भव है । वहा तो अग लूछने करते समय इतनी उतावल करने में आती है कि, कोने खड्डे की ममाल भी नहीं की जाती ! और दृष्टि भी नहीं डाली जाती ! इसलिये वालाकूची करने में जितना ध्यान देने की आवश्यकता नहीं, उतनी आवश्यकता अग लुहने करते समय कोने खड्डों में जल भरा हुआ न रह जाय इस बातकी सभाल करने की है । जो इस विषय में उपेक्षा करते हैं वे पुजारी लोगों के द्वारा होने वाली आसातनाओं के हिस्से दार हैं, यह बात नहीं भूल जानी चाहिये । इस विषय में यदि विशेष इत्मीनान करना हो तो एक वक्त ऐसी वालाकूची का अपने शरीर पर प्रयोग करके देखना चाहिये जिससे इस विषय का ज्ञान हो जायगा और वालाकूची उपकरण से अधिकरण की गरज को जियादह पूरी कर देती है यह बात समझ में आजायगी ।

६–प्रक्षाल करने के बाद अङ्गलूहने करने में आते हैं, य कितनीक जगह तो उत्तम, स्वच्छ, मुलायम और उज्वल रक्खे जाते हैं, परन्तु कितनेक गावों और शहरों में तो फटे हुए मैले, जाडे और बहुत ही छोटे रक्खने में आते हैं, कि जो प्रभु की भक्ति की जगह आसातना की गरज पूरी करते हैं। प्रत्येक अच्छी स्थिति वाले बन्धुओं को उचित है कि, वे अपने उपभोग में लाते हैं वैसे उज्वल वस्त्रों से प्रतिवर्ष २ अंगलूहने मंदिरजी में रक्खें। इसी प्रकार मन्दिर के प्रबंधकर्ता इस कार्य के लिए उत्तम वस्त्र लाने की उदारता दिखाए, नियमित समय पर बदलवाए, प्रतिदिन धोकर बराबर स्वच्छ रखने में आते हैं या नहीं, इस विषय की समाल रक्खें तो यह अविवेक अथवा अनादररूप आसातना न हो। जहां तक बने वहांतक तो ऊंचे प्रकार की मलमल के ही अंगलूहने चाहिये, इसमें भी यदि ऐसा न हो तो मोटी जगन्नाथी के या ऐसे ही दूसरी तरह के रक्खे जाय तो हर्ज नहीं।

७—अंगलूहना करने के बाद चन्दनपूजा की जाती है, उसमें केशर चालीस पचास रुपये रतल की काममें लाई जाती है। और चन्दन कि, जिसकी खास पूजा है, वह बिल्कुल हलका सुगंध रहित, सामान्य प्रकार के लक्कड के समान काम में लाया जाता है। यह बात खास ध्यान में रखने की है कि,

चन्दन जैसे बने वैसे ऊंच प्रकार का जियादह कीमत का मंगवाना चाहिए, यदि इसमें खर्च अधिक होता हो तो यह खर्च केशर कम खर्च करके निकाल लेना चाहिए। बहुत लाल केशर चढाना तो दूसरी तरह भी ठीक नहीं, क्योंकि बहुत से बिम्बों पर इससे दाग पडजाते हैं। अथवा छिद्र या खड्डे पड जाते हैं इत्र लगाने के सम्बन्ध में भी यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि, जिस बिम्ब पर इत्र लगाना अनुकूल न हो वहां जरा भी लगाना आवश्यक नहीं।

८—अब पुष्पपूजा की बारी है। पुष्प-फूल दो प्रकार से चढाए जाते हैं, खाली और हार। फूल, सुगंधियुक्त, जिन की पखडी न टूटी हो ऐसे, और सुशोभित होने के अतिरिक्त योग्य रीति से लाये हुए भी होने चाहिए। जो स्त्री, स्त्रीधर्म (ऋतु) के दिन भी नहीं पालती हो, ऐसी मालिन या अन्य स्त्रियों के लाये हुए फूल तो कदापि चढाने योग्य नहीं। इसके सिवाय पुरुष भी विवेकपूर्वक लाया हो, वैसे फूल लेने चाहिए। प्रत्येक फूल को अच्छी तरहसे देखना, उसको ऊंचा नीचा कर के हिलाना, और फिर उसको आनन्द उत्पन्न हो उतना जल फवारे के समान उसपर छांटना चाहिए, पुष्प को सतत धोने की आवश्यकता नहीं, इससे उसकी विराधना ही नहीं होती किन्तु उसके भीतर रहे हुए, अपनी दृष्टि में न आए और हिलाने से

लेकर दूर न डालते हुए जलके भीतर ही रख देते हैं, कि जिसमे उन में रहे हुए त्रस जीवों का विनाश हो जाता है। पहले या बाद में किसी भी समय एक भी फूल प्रक्षाल के जल में नहीं गिरना चाहिये। यह बात खास ध्यान में रखने योग्य है।

५—जिन बिम्ब पर चढी हुई पहले दिन की केशर को **बासी केशर** कहने में आती है, उसको दूर करने के लिये कपडे को भिगोकर काम लेने की आवश्यकता है, उसके स्थान में बाला कूँची से इस तरह प्रक्षाल करने में आता है कि जैसे सुनार आभूषण धोता हो। इस में भी सुनार की बाला कूंची बालों की बनी हुई होने से सुकोमल होती है और ये बालाकूंचिया तो सुगंधि वालों की बनी हुई होने से अति कठोर—कर्कश होती हैं, इसमें किसी प्रकार का भी अभी तक सुधार नहीं हुआ। ऐसी बालाकूंचियों से प्रभु के सारे शरीर को घिसना, यह एक प्रकार की महान् आशातना है। इसलिये जहा तक बने वहा तक बालाकूंचियों का इस्तेमाल नहीं करना चाहिये। यदि जिनबिम्ब के किसी अङ्ग में खड्डे पड़े हुए हों और उनमें केशर भरजाती हो तो केवल वहीं पर नम्र हाथ से बालाकूंची का किंचिमात्र उपयोग करना चाहिए। बाला कूंची का निरंतर उपयोग करने से जिनबिम्ब कितना घिस जाता है। यह उसके शरीर के अमुक स्थल, पालोठी पर के

पेल और धातु के बिम्ब के मुखनासिका आदि व सिद्धचक्र के अङ्गोपाग देखने से प्रत्यक्ष मालुम हो जाता है । बालाकूची बिल्कुल इस्तेमाल न की जाय और कहीं भी केशर भरी रहजाय तो उससे इतनी आसातना नहीं होती जितनी कि वालाकूची करने से होती है । विशेषत विचार तो केशर भरी रहजाने का नहीं पर पानी भरे रह जानेका करना चाहिए कि, जिसमे लील फूलन और मैल भरजाने का सम्भव है । वहा तो अग पूछने करते समय इतनी उतावल करने में आती है कि, कोने खड्डे की समाल भी नहीं की जाती । और दृष्टि भी नहीं डाली जाती । इसलिये वालाकूची करने में जितना ध्यान देने की आवश्यकता नहीं, उतनी आवश्यकता अग लुहने करने समय कोने खड्डों में जल भरा हुआ न रह जाय इस बातकी सभाल करने की है । जो इस विषय में उपेक्षा करते हैं वे पुजारी लोगों के द्वारा होने वाली आसातनाओं के हिस्से दार हैं, यह बात नहीं भूल जानी चाहिये । इस विषय में यदि विशेष इतमीनान करना हो तो एक वक्त ऐसी वालाकूची का अपने शरीर पर प्रयोग करके देखना चाहिये जिससे इस विषय का ज्ञान हो जायगा और वालाकूची उपकरण से अधिकरण की गरज को जियादह पूरी कर देती है यह बात समझ में आजायगी ।

६–प्रक्षाल करने के बाद अङ्गलुहने करने में आते हैं, य कितनीक जगह तो वराम, स्वच्छ, मुलायम और उज्वल रखते जाते हैं, परन्तु कितनेक गावों और शहरों में तो फटे हुए मैल, जाडे और बहुत ही छोटे रखने में आते हैं, कि जो प्रभु की भक्ति की जगह आसातना की गरज पूरी करते हैं। प्रत्येक अच्छी स्थिति वाले बन्धुओं को उचित है कि, वे अपने उप-भोग में लाते हैं वैसे उज्वल वस्त्रों में से प्रतिवर्ष २ अगलुहने मन्दिरजी में रखें। इसी प्रकार मन्दिर के प्रबन्धकर्ता इस कार्य के लिए उत्तम वस्त्र लाने की उदारता दिखाए, नियमित समय पर बदलवाए, प्रतिदिन धोकर बराबर स्वच्छ रखने में आते हैं या नहीं, इस विषय की समाल रक्खें तो यह अविवेक अथवा अनादररूप आसातना न हो। जहां तक बने वहांतक तो ऊंचे प्रकार की मलमल के ही अगलुहने चाहिये, इसमें भी यदि ऐसा न हो तो मोटी जगनाथी के या ऐसे ही दूसरी तरह के रक्खे जाय तो हर्ज नहीं।

७—अगलुहना करने के बाद चन्दनपूजा की जाती है, उसमें केशर चालीस पचास रुपये रतल की काममें लाई जाती है। और चन्दन कि, जिसकी खास पूजा है, वह बिल्कुल हलका सुगंध रहित, सामान्य प्रकार के लकड के समान काम में लाया जाता है। यह बात खास ध्यान में रखने की है कि,

चन्दन जैसे बने वैसे ऊच प्रकार का जियादह कीमत का मगवाना चाहिए, यदि इसमें खर्च अधिक होता हो तो यह खर्च केशर कम खर्च करके निकाल लेना चाहिए। बहुत लाल केशर चढाना तो दूसरी तरह भी ठीक नहीं, क्योंकि बहुत से बिम्बों पर इससे दाग पडजाते हैं। अथवा छिद्र या खड्डे पड जाते हैं इत्र लगाने के सम्बन्ध में भी यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि, जिस बिम्ब पर इत्र लगाना अनुकूल न हो वहा जरा भी लगाना आवश्यक नहीं।

८—अब पुष्पपूजा की बारी है। पुष्प-फूल दो प्रकार से चढाए जाते है, खाली और हार। फूल, सुगंधियुक्त, जिन की पखडी न टूटी हो ऐसे और सुशोभित होने के अतिरिक्त योग्य रीति से लाये हुए भी होने चाहिए। जो स्त्री, स्त्रीधर्म (ऋतु) के दिन भी नहीं पालती हो, ऐसी मालिन या अन्य स्त्रियों के लाये हुए फूल तो कदापि चढाने योग्य नहीं। इसके सिवाय पुरुष भी विवेकपूर्वक लाया हो, वैसे फूल लेने चाहिए। प्रत्येक फूल को अच्छी तरहसे देखना, उसको ऊचा नीचा कर के हिलाना, और फिर उसको आनन्द उत्पन्न हो उतना जल फवारे के समान उसपर छाटना चाहिए, पुष्प को सतत धोने की आवश्यकता नहीं, इससे उसकी विराधना ही नहीं होती किन्तु उसके भीतर रहे हुए, अपनी दृष्टि में न आए और हिलाने से

भी नहीं निकले हुए, त्रस जीवों की भी विराधना होती है। फूल स्वयम् उत्तम है, उसको पानीसे पवित्र करने की आव श्यकता नहीं। फूल पृथक् २ शोभायमान होंवें उसप्रकार से जिन बिम्ब पर चढाने चाहिए, इसमें जो अविवेक किया जाय सो आसातना लगती है। फूलों के हार के सम्बध में तो अवश्य विचार करना चाहिए। फूलों को सूई से पिरोकरब नाए हुए हार तो बिल्कुल चढाने योग्य नहीं, उनमें तो प्रत्यक्ष आसातना है, जिन आज्ञा भग होती है, जीवों की विराधना है और दयालु कहलाने वाले श्रावक भाइयों को ऐसी प्रवृत्ति कभी शोभा देने वाली नहीं है। बेचारे बहुत भोले भक्तिवान् भाइयों के दिलमें यह बात अभीतक बराबर नहीं बैठती और श्रीसिद्धा चलादि तीर्थों पर यह बात हद से अधिक बढा दीगई है जो सर्वथा अयोग्य है। श्राद्धविधि आदि ग्रंथों में फूल चार प्रकार से चढाने की आज्ञा है, जिसमें प्रत्यक्ष रीतिसे फूलों को गूथ कर हार बनाने का कहा है, यह बात जितनी स्पष्टता से जानने की इच्छा हो, उतनी ही स्पष्टतासे दिखाई जासकती है, परन्तु इस भक्ति के नाममे होनेवाली आसातना को तो बिल्कुल रोक देने की आवश्यकता है। उम्मीद कीजाती है कि, सुज्ञ जैनबधु इस वृत्तान्त पर खास करके ध्यान देंगे और इस हिंसा-आसा तना से सत्वर दूर रहेंगे।

९—पुष्प पूजा के बाद धूप, दीप पूजा करने में आती है, अग्रपूजा कहलाती है। अग्रपूजा वस्तुत गर्भगृह-मूल मन्दिर के र से ही करना उचित है। पर यह पूजा भीतर रहकर की ी है, यही नहीं किन्तु धूप तो प्रभु के मुख तक लेजाते हैं। ान पूजा करने वाले अगरबत्ती का टुकडा धूपदान में नहीं ते हुए हाथमें ही लेकर प्रभु के मुखारविन्द तक लेजाते हैं, सिसे राख और आग की चिनगारिया प्रभु के शरीर पर पडती । यह अज्ञानता दूर करने की परम आवश्यकता है। इसमें कि करते हुए आशातना होती है। कोयले से मन्दिर की भीत अपना नाम लिखने वाले अज्ञानी मनुष्य जितना नुकसान ने हैं उससे भी अधिक नुकसान मूल निजमन्दिर में धूप दीप क मन्दिर को काला कर देनेवाले अज्ञानी मनुष्य करते हैं। न विषय पर खास लक्ष्य देना चाहिए। धूपदान हो तो उसही धूप देना चाहिए।

१०—दीप पूजा करने वाले मन्दिर के भीतर का मन्दिर के व्य से लाया हुआ घृत और उसका किया हुआ दीपक तैयार खकर स्वयम् भी दीपक उतारने लगजाते है। अगरबत्ती जैसे धारण रात्ने की खरीदी हुई होती है वैसे यह घी नहीं होता, ह बात यान में रखना चाहिए। विशुद्ध प्रेमी श्रावक अपने

घर का घी रखकर उसका दीपक करके स्वयम् उतारते है, मन्दिर के सूत की बत्ती भी काममें नहीं लाते।

११—इसके बाद प्रभु सम्मुख गर्भगृह की बाहिर बैठकर अक्षतफल और नैवद्य, य तीन पूजायें एक साथ कीजाती है। इसमें जिसप्रकार क विवेक की आवश्यकता है वह भूल जाते है। मुह से बोलते हैं कि "अक्षत शुद्ध अखंड से जो पूजे जिनराय" परन्तु स्वयम् जिनका स्वस्तिक करते है, वे कैसे अक्षत चावल है? इस बात पर ध्यान नहीं देते। कितनेक वक्त चावलों में धनरिये और कसे उत्पन्न हुए जानवर भी देखे जाते है, कि जिनकी विराधना होती है। फल भी साधारण और नैवेद्य के स्थान में मिश्री का टुकडा या ऐसी ही साधारण वस्तु चढा दीजाती है। सदैव के लिए तो चाहे जो हो पर पर्व के दिन या अपने यहां लग्नादि प्रसग पर बहुत मिठाइ हो तब, और महमानों के लिए अधिक मिठाई लाते हो अथवा बनवाइ हो तब भी जिनेश्वर की भक्ति का स्मरण नहीं होता। फल भी उत्तम प्रकार के नहीं चढाये जाते, यह जिनपूजा का अल्पादर दिखाता है।

१२—द्रव्यपूजा करने के बाद भावपूजा का समय आता है। द्रव्यपूजा में बहुत समय लगाने वाले भी भावपूजा में बहुत सुस्त मद आदर वाले दीखते है। द्रव्यपूजासे अनन्त गुणा फल

भाव पूजा का कहा है, पर उसके अल्पादर का एकमात्र कारण सम्यक् भाव की कमी होने का ही है। दिन प्रति दिन भाव पूजा का अधिक आदर करने की आवश्यकता है, यह बात ध्यान में रखनी चाहिये।

१३—प्रसगवश अगरचना आदि के सम्बन्ध में होनेवाली आसातनाए बतलाना उचित है अगरचना के प्रसग पर खूब दीपक करने में आते हैं कि जिनकी गर्मी अपने को भी असह्य हो जाती है और चातुर्मास के दिनों में जीव विराधना भी बहुत होती है। कितनेक वक्त तो खुले हुए दीपक ग्लासादि में रखे जाते हैं जिनमें भी बहुत विराधना होती है। ऐसा करने से भक्ति के स्थान में आसातना होती है। जयणा बिगेर "करणी" फल दायक नहीं होती।

१४—महोत्सवादि प्रसगों पर 'वरघोटा'-जलूस निकाला जाता है, उस में जो जिनबिम्ब का अत्य त सम्मान होना चाहिए, वह नहीं होता, इससे भक्ति नहीं पर आसातना होती है। यह पहिले निकलने वाली रथयात्रा का अनुकरण है, यह रथयात्रा किस तरह निकाली जाती थी उसका शास्त्रोक्त वर्णन बाचना चाहिय कि जिससे अपन कितना अल्प आदर करते हैं, यह बात ठीक तौर से मालूम होगी।

१५—जिन मंदिर के अन्दर बैठ कर कितनेक स्थानों पर ऐसी विकथा और निन्दा की जाती है कि जो सुन सुनने वालों को अत्यंत कठिन कटक समान लगती है। यह तो प्रत्यक्ष आसातना ही है। मंदिर के भीतर केवल धर्म चर्चा करना हो, नवकारादि का जाप करना हो विधि युक्त चैत्यवन्दन देववन्दन करना हो, पूजा पढ़वाना हो, इत्यादि प्रशस्त हेतु हो तब ही अधिक समय तक बैठना चाहिए, नहीं तो वहां जियादह वक्त तक बैठने से औदारिक देह से दूसरी भी आसातना होनी सम्भव है।

१६—पूजा पढ़ाने के लिए बहुत से भाई अपने समय का सदुपयोग करते हैं पर उसमें पहले तो खुले मुह बोलने से पूजा की पुस्तक पर और मंदिर में थूक उड़ने से और मुह की दुर्गंध फैलने से आसातना होती है। मन्दिर में प्रवेश करने के समय से पीछे निकलें उस वक्त तक खुले मुह बोलने का निषेध ही है अष्ट पट मुख कोश और उत्तरासन का पल्ला इसी काम के लिए है, इस विषय का विचार जरा भी नहीं रखा जाता। इस पर भी स्वयम् क्या बोलते हैं उसका अर्थ विचारने में नहीं आता, पोपट पाठ जैसा अधिकांश में होता है पूजा पढ़ाने का फल परमात्मा के गुणानुवादादि से होने वाले भाव पूजा का जो

फल है। वही इसका फल है, जिसकी प्राप्ति, अर्थ विचारे बिना नहीं होसकती।

१७—पूजा पढाने में और चैत्यवन्दनादि करने में अर्थ से अज्ञान मनुष्य इतना अशुद्ध बोलते हैं कि, कितनेक वक्त परमात्मा की स्तुति के स्थान पर निन्दावाचक शब्दों का उच्चारण होता है, कौनसा स्तवन किस जगह बोलना इसका विचार तो अर्थ शून्य मनुष्य कहा से करे? इसलिए पूजा और स्तवन-स्तुति आदि के अर्थ का विचार करने के लिए उन के अर्थ समझने का प्रयत्न करना और शुद्ध शब्दोच्चारण के साथ अर्थ का विचार करना चाहिए, जिससे आसातना रुकेगी और भक्ति का फल प्राप्त होगा।

१८—इस प्रसग पर जिन पूजा के उपकरणों के सम्बन्ध में भी ध्यान दिलाया जाता है कि, प्रत्येक उपकरण स्वच्छ रहना चाहिए। कलश साधी नली वाले ही इस्तेमाल करने चाहिए कि जिनमें पानी का असर न रहे और जीवजन्तु उत्पन्न न हों। उनको भीतर व नली में से पुंछवा कर नित्य साफ कराना चाहिए। इसमें जितना प्रमाद होता है, उतनी ही जीव विराधना और आसातना होती है, यह ध्यानमें रखना उचितहै।

यह लेख यहीं समाप्त किया जाता है। इसमें खास खास बातें ही बतलाई गई हैं। इसके अतिरिक्त होती हुई अनेक

बातें ऐसी हैं कि, जिनमें विचार शून्य मनुष्य बहुत भूलें करता है। पर कितनीक भूलें अज्ञानतावश माफ होसकें ऐसी होती हैं और कितनीक माफ ही नहीं होसकती। इससे भक्ति करने जाते उल्टी आसातना करके लाभ के बजाय हानि न हो इस अभिप्राय से इस लेख को लिखने का प्रयास किया गया है। जिज्ञासु जन इसको सार्थक करेंगे ऐसी उम्मीद कीजाती है।



ॐ

जिनराज भक्ति



जब "भक्ति के निमित्त होने वाली आशातनाओं" का लेख लिखा गया तो कितनेक बन्धुओं की तरफ से ऐसी इच्छा प्रकट हुई कि, इस लेख के साथ में यानी इस लेखकी पुष्टि में "भक्ति किस प्रकार करनी चाहिए," इस विषय के लेख की भी आवश्यकता है। क्योंकि, कितनेक सुज्ञबन्धु तो उपरोक्त लेख से ही भक्ति की रीति समझ सकते है, पर कितनेक सरल जीवों के लिए स्पष्टतया भक्ति का ही प्रतिपादन करने वाले लेख की आवश्यकता है। ऐसी इच्छा से यह लेख लिखने की प्रवृत्ति हुई है।

तीर्थंकर महाराज अपने परम उपकारी हैं, अपने को शुद्ध-मार्ग बतलाने वाले हैं और सर्व दोषों से विमुक्त होने के साथ सर्वगुण सम्पन्न हैं। ऐसे परमात्मा की भक्ति, वदन, नमन, पूजन और स्तवनादि से होती है। ऐसा करने का प्रथम हेतु यह है कि, उपकारी का उपकार मानना कृतज्ञता है। उपकार का मानाजाना तभी कहा जासकता है कि, जब यथाशक्ति–शक्ति

अनिवार्य कर्त्तव्य है। तो अब भक्ति किस तरह करनी चाहिए, उसका विचार करना उचित है।

ऊपर कहचुके हैं कि, परमात्मा की अथवा किसी भी श्रेष्ठ गुणवान् की भक्ति, वंदन, नमन पूजन और स्तवन आदि से होती है। परमात्मा की भक्ति कैसे करना चाहिए। यह चैत्य वन्दन भाष्यादि में बहुत अच्छी तरह बतलाया गया है, उसपर से संक्षेप में यहां बतलाया जाता है।

परमात्मा साक्षात् तो इस कालमें नहीं वर्तते हैं, इसलिये उनकी भक्ति की रीति का चिन्तवन करते उनकी मूर्तिकी भक्ति करनी चाहिये उनके गुणानुवाद करना और उनकी आज्ञाका यथा शक्ति प्रतिपालन करना चाहिए। ये तीन रीतियां भक्तिसूचक, दृष्टिगोचर होती है। भक्ति बहुमान के अन्दर दर्शन पूजनका समावेश होता है। परमात्मा की मूर्ति कि जो इस जीव का आत्महित साधन करने में आलम्बनभूत है, उनके तीनों कालमें दर्शन और पूजन करना शास्त्रों में कहा है। प्रातःकाल दर्शन समय, दर्शन के साथ में ही वासक्षेप से पूजन की जाती है मध्याह्न दर्शन समय अष्ट प्रकार से पूजन होती है और संध्या के दर्शन समय धूप दीपादि से पूजन कीजाती है। इन तीनों समय में दर्शन पूजन के साथ ही चैत्यवन्दनादि भावपूजन करना कहा है। क्योंकि,

को किञ्चित् भी शोधन करने के अतिरिक्त उसकी भक्ति करने में आती हो। दूसरा हेतु यह है कि, वे शुद्धमार्गोपदेशक हैं। इस जीवन में भी अभीतक अशुद्ध मार्गोपदेशक के बतलाए हुए मार्ग पर ही चलकर संसार में परिभ्रमण किया है। जिनको स्वयम् शुद्धमार्ग की प्राप्ति न हुई हो, वे अन्य को शुद्धमार्ग कहा से बतला सकते हैं? लौकिक देव और लौकिक गुरु स्वयम् शुद्धमार्ग की अनभिज्ञता के कारण अभी तक संसार में भटकते हैं। वे शुद्धमार्गोपदेशक होने का दावा करते हों तो यह मिथ्याभिमान है। जहांतक सर्वथा राग द्वेष का क्षय न हो—वीतरागता प्राप्त न हो, वहा तक वास्तविक शुद्धमार्ग बताया ही नहीं जासकता। कारण कि, असर्वज्ञता जहा तक हो, वहांतक सम्पूर्ण शुद्धमार्ग नहीं कहा जासकता और सत्य सर्वज्ञता वीतरागावस्था में ही प्राप्त होसकती है। परमात्मा की भक्ति का यह दूसरा हेतु है। तीसरा हेतु यह है कि वे सर्वगुण सम्पन्न हैं अनन्त गुणों के स्वामी हैं, इसके साथ ही वे सर्व दोषों [redacted] विमुक्त भी हैं, ऐसे परमात्मा की भक्ति अपनी आत्मा में भी वैसे गुण प्रकट करती है। 'गुणी की भक्ति गुण निष्पन्न करती है, यह बात शास्त्र सिद्ध है। ये तीन हेतु मुख्य हैं। दूसरे भी परमात्मा की भक्ति के अनेक हेतु हैं। इससे ये परमात्मा भक्ति करने योग्य हैं। और भक्ति करना यह अपना

पूजन करने के लिए बने वहांतक घर से ही स्नान कर, शुद्ध होकर, शुद्ध वस्त्र पहन कर रास्ते में अपवित्र वस्तु या मनुष्य यथा पशु आदि का संसर्ग न हो, ऐसे उपयोग के साथ जिन मन्दिर को जाना चाहिये । स्नान करने का स्थान जीवाकुल न होना चाहिये, सचित्त मिट्टी वाला भी नहीं होना चाहिये । वहां धूप आती हो और पानी सूख जाय ऐसा स्थान होना चाहिय । ऐसे स्थल पर चार पाए वाले छोटे पाट तरने पर बैठ कर थोडे से गरम जल से सारा शरीर साफ हो जाय उस तरह हाथ से मलकर परिमित जल द्वारा स्नान करना चाहिये । उस समय बाल, कंठ, कपालादि अवयव बराबर स्वच्छ करने चाहिए नहाकर शीघ्र ही उम्दा मुलायम, पानी को चूसले ऐसे रुमालसे शरीर को मलकर शरीर को निर्जल करना चाहिए । फिर पूजन के वस्त्र पहिनने से पहले एक ऊनका वस्त्र कमली आदि पहनना चाहिये कि जिस से शरीर बराबर निर्जल हो जाय । पूजन के वस्त्र बने वहा तक श्वेत—सफेद हों और निर्मल स्वच्छ हों । य वस्त्र पूजन करने के बाद प्रतिदिन धुल जाय ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये । इस कारण से सूती वस्त्र अधिक अनुकूल होंगे बाकी श्रीमन्तों के लिय तो रेशमी वस्त्र भी जो प्रतिदिन धुल-जाय, ऐसे रक्खे जाय तो हर्ज नहीं * ।

---

* रेशमी वस्त्र कैसे बनते हैं । यह बात शायद सब

द्रव्यपूजा, भावपूजा के ही निमित्त कीजाती है। द्रव्य विना भाव की निष्पत्ति सांसारिक जीवों को नहीं होसकती, इस लिए द्रव्यपूजा की आवश्यकता है। परन्तु इसके साथमें भावपूजा को नहीं भूलजाना चाहिए क्योंकि, द्रव्यपूजा तो परिमित फल देने वाली है और भावपूजा अपरिमित फलदायक है।

दर्शन या पूजा करने जाते समय पांच अभिगमन और दश त्रीक का मुख्य ध्यान रखना चाहिए, उनमें भक्ति की सर्व रीतियों का समावेश होजाता है। दर्शन करने के लिये घर से निकलते और रास्ते चलते जो फल शास्त्रकारों ने बतलाया है, वह मात्र दर्शन, पूजन सम्बन्धी अथवा परमात्मा के गुणों के सम्बन्ध में विचार करते करते एकाग्र चित्त करके चले जाने वाले के लिए है। रास्ते में अनेक व्यवसाय करता हुआ, अनेक प्रकार की विकथा करता हुआ, अनेक प्रकार के आरंभ करने की आज्ञा देता हुआ जाता है, उसके लिए इस फलकी प्राप्ति नहीं समझनी चाहिए। प्रात काल दर्शन करने के लिए जाने वाले को सर्व स्नान करके जाने की आवश्यक्ता नहीं, हाथ, पाव आदि अशुद्ध हुए शरीर के भाग को जलसे शुद्ध करके जाने की जरूरत है। सन्ध्या समय भी यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए। इन दोनों समय में प्रभु पूजन न करने के कारण से सर्व स्नान की आवश्यक्ता नहीं। मध्याह्न में अष्टप्रकारी

चाहिये। जिन पूजा निमित्त जल, फूल फलादि वस्तुओं का निषेध नहीं समझना चाहिये। अपनी शोभा की फूल मालादि छोड़ देनी चाहिये।

(ख) अचित्त वस्तु—उपलक्षण से शरीर की शोभा की वस्तुए के जानी चाहिए। जिन पूजा में आभूषणादि को उतारने की आवश्यकता नहीं। पर राज्य चिन्ह के समान मुकुटादि हों तो उतार देने चाहियें। यानी ऐसे पदार्थ जिनमन्दिर के बाहर रख देने चाहियें।

(ग) मन को एकाग्र करना चाहिये।

(घ) प्रभु की मूर्ति दृष्टिगोचर हो उसी समय से दोनों हाथ जोड रखने चाहियें।

(च) एक वस्त्र का उत्तरासन करना चाहिये। यह उत्तरासन चैत्यवन्दनादि करते समय भूमि प्रमार्जन करने के भी काम में आता है।

इन पांचों अभिगमनों के अतिरिक्त राजाओं को खड्ग, छत्र, मुकुट, चवर और जोडे (मोजे आदि) छोड़ देने कहे हैं अपने को भी लकडी, छतरी, जोडे आदि बाहर ही छोड देना चाहिये, मोजे पहन कर भी जिनमन्दिर में जाना उचित नहीं।

२ उपरोक्त पांच प्रकार के अभिगमनों का विचार रखकर जिनमंदिर में प्रवेश करते समय प्रथम अग्र द्वार पर अन्य सब

ऐसे वस्त्र पहन कर अष्ट पट मुखपोश बांधकर पूजन उपकरणों को साथ लेकर जिनमन्दिर जाना चाहिये। मुखपोश अग्रपूजा के ही समय बांधने का नहीं समझना पर जहां तक गर्भ गृह में रहें वहां तक मुह बांधे रहना चाहिये, क्योंकि गर्भ गृह में खुले मुह बोलने से दुर्गन्ध निकलता है और थूक इत्यादि है, इस लिये जिनमंदिर से बाहिर निकलने के पश्चात् मुखपोश खोलना चाहिये।

इस के साथ इतना ध्यान में रखना चाहिये कि मुखपोश बंधा हुआ हो तो भी प्रभु की जल, चन्दन या पुष्प पूजा करते समय नहीं बोलना चाहिये। मौनावस्था में परमात्मा के गुणोंका चिन्तवन करते हुये अगपूजा करनी चाहिये। यह बात खास ध्यान में रखना योग्य है।

१ तीनों काल की पूजा दर्शन निमित्त जिनमन्दिर जाते समय पांच अभिगमनका विचार रखना चाहिये, वह इस प्रकार –

(क) सचित्त वस्तु और उपलक्षण से अपने खाने की कोई भी वस्तु जिनमन्दिर के अहाते के भीतर नहीं ले जाना

साधारण नहीं जानते होंगे। एक वस्त्र बनानेमें असंख्य प्राणियों का बिना अपराध ही नाश किया जाता है। (देखो हमारी लिखी हुई कमनीय कमलिनी, पृष्ट ६८) हम इस विचारसे सहमत नहीं। अनुवादक।

४ तीन प्रदक्षिणा देकर मुख्य द्वार से रग मडप में प्रवेश करते समय दूसरी वक्त "निस्सिही" कहनी चाहिए यह "निस्सिही" निज मन्दिर सम्बन्धी व्यापार त्याग की सूचना स्वरूप है। अब केवल जिन दर्शन या जिन पूजन सम्बन्धी ही व्यापार करना रहा है। कभी अन्दर आने के बाद जिन मन्दिर सम्बन्धी किसी कार्य पर लक्ष्य पहुंचे तो रग मडप के बाहिर जाकर वह कार्य करना या कराना चाहिए पर भीतर रह कर हुक्म नहीं करना चाहिए।

५ रग मडप में प्रवेश करने के बाद निजमन्दिर के नजदीक जाकर पुरुषों को प्रभु की दाहिनी बाजू और स्त्रियों को बाई तरफ खडे रहकर दर्शन करना चाहिए। चैत्यवन्दनादि के समय भी यही दिशा विभाग समझना चाहिए। और रग मडप से बाहिर निकलते समय भी अपनी २ दिशा के ही द्वार से निकलना चाहिए। बराबर सामने खडे रहकर तो दर्शन चैत्यवन्दनादि करना ही नहीं चाहिए, क्योंकि इससे दूसरे बहुतसों को दर्शन की अन्तराय पडती है। और अविवेक भी मालूम होता है। स्त्री पुरुष के अलग अलग निकलने के ही सबब से रग मडप के तीन द्वार बनाने की योजना की जाती है। शाश्वत चैत्यों के भी तीन द्वार होते हैं, केवल जहा चौमुख बिम्ब प्रतिष्ठित हो वहा गर्भ गृह के चार द्वार होते हैं।

गृहव्यापारादि त्याग स्वरूप "निसिही" कहनी चाहिये । इसके बाद अन्य कार्य सम्बन्धी आलाप सलाप भी नहीं करना चाहिये । जिनमन्दिर दर्शन करने आने वाली स्त्रियाँ और रात्रि को जिन मंदिर की छत पर बैठने वाले पुरुषों के लिये अन्य प्रकार की बात चीत करने का निषेध है । अपन ने ऐसी प्रतिज्ञा करके ही जिनमंदिर में प्रवेश किया है, यह बात याद रखने की है । स्त्री वर्ग प्रदक्षिणा देते समय और बाहिर निकलते समय अनेक प्रकार की सांसारिक बातें करती हैं । पर ऐसी बातें करने से परमात्मा की आज्ञा का और अपनी की हुई प्रतिज्ञा का भंग होता है यह बात ख्याल में रखनी चाहिए।

३ जिन मन्दिर में प्रवेश करके प्रभु के सामने जाकर दूर से मुख दर्शन करने के बाद प्रभु की दाहिनी बाजू से तीन प्रदक्षिणा देनी चाहिए, इन प्रदक्षिणाओं में प्रभु के गुणों का चिन्तवन करना चाहिए, स्तुति स्वरूप जो कुछ याद हो वह बोलने की आज्ञा है । पर साथ में जीवों की रक्षा करनी चाहिए किसी भी अशुद्ध पदार्थादि से आसातना होती हो तो उसका निवारण करना चाहिए । यह त्रिप्रदक्षिणा भवभ्रमण निवारण के लिए परम साधन है । पुरुष वर्ग में इस प्रवृत्ति का अधिकता से विनाश होगया है, पर यह खास तौर से आदरणीय है ।

आगे देकर चैत्यवन्दन के प्रारम्भ में तीसरी वक्त "निस्सिही" कहनी चाहिये। यह निस्सिही जिन दर्शन या पूजा सम्बन्धी व्यापार की त्याग सूचक है। अब सिर्फ भाव पूजा ही करने की होने के कारण यहा द्रव्य पूजा का त्याग किया जाता है। प्रभु समक्ष, अक्षत, फल, नैवेद्यादि रखने हों वे सब चैत्यवन्दन करने के पहिले ही अर्पण कर देने चाहिए। चैत्यवन्दन करते समय तो द्रव्य पूजा सम्बन्धी कुछ भी प्रवृत्ति नहीं करनी चाहिये। उस समय तो केवल प्रभु के सामने दृष्टि लगाकर एकाग्र चित्त से प्रभु के गुणों की स्तुति करनी चाहिए। इस समय बने वहा तक प्रभु के और अपने बीच में कोई आने जाने न पावे ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए। क्योंकि मनुष्यों के बीच में आने से अविच्छिन्न दृष्टि और ध्यान में भी अन्तराय पडती है।

११ अक्षत का स्वस्तिक चतुर्गति का अन्त सूचक है, तीनों ढगलिया ज्ञान दर्शन और चरित्र स्वरूप रत्न त्रय की आराधना सूचक हैं और ऊपर में सिद्ध शिला की आकृति उस स्थान की प्राप्ति का परम इच्छा सूचक है। यह आकृति कैसी ? यह समझने योग्य है, इस जगह अक्षत के अष्ट मागलिक भी किये जाते हैं, या नन्दावर्त्त किया जाता है, इसमें जहानक बने वहा तक उज्ज्वल और अखड चावल काम में लाने उचित हैं। फिर उसपर फल रखना चाहिए, पर तुच्छ फल तो कभी भी

६ दर्शन करते समय पहले तो आधा शरीर झुका कर प्रणाम करना चाहिए, हाथों को जोड़कर मस्तक पर लगाने चाहिए और फिर खमासमण देते समय दो हाथ, दो घुटने और मस्तक, ये पांच अंग भूमि पर लगाने चाहिए (हाथ और मस्तक भूमिपर नहीं लगाने वाले का खमासमण सही नहीं समझा जाता) इसमें तीनों प्रकार के प्रणामों का समावेश होता है।

७ प्रणाम करते समय प्रभु स्तुति संस्कृत, मागधी या हिंदी श्लोक, गाथा या वृत्तादि से करनी चाहिए। उस वक्त एक से लगाकर १०८ तक श्लोकादि कहने चाहिए पर उनका उच्चारण शुद्ध करना चाहिये, अर्थ बराबर चिंतवन करना चाहिये और प्रभु की प्रतिमा के सामने अविच्छिन्न दृष्टि रखनी चाहिये यह त्रिचैत्यवन्दनादि के समय भी ध्यान देने योग्य है।

८ दर्शन करते समय आसपास या पीछे की तरफ नजर नहीं करनी चाहिए, परमात्मा के सामने ही दृष्टि रखनी चाहिये।

९ खमासमण देते समय पांव घुटने और हाथ रखने की जमीन उत्तरासन के पल्ले से प्रमार्जन करनी चाहिए।

१० प्रात:काल और संध्या को दर्शन करने के बाद अगर पूजा न करने के कारण मूलनायक जी आदि सब बिम्बों के बराबर दर्शन करके प्रभु के सामने भी दाहिनी बाजू तीन खमा

प्रक्षाल करने की कुंडी, न्हवण का पानी झेलने का बर्तन, वाला कूंची, अगलूहने, पाटलूहने, मयूरपिच्छी, पाट, चँवर, घटा आदि सबको प्रात समय दृष्टि से देखकर प्रमार्जन करके झटक कर और धातु के तमाम बर्तन पानी से साफ करके फिर काम में लाने चाहिए। इनमें दृष्टि से देखने का लक्ष्य बराबर रखना चाहिए, इसके बिना तो साफ करते समय भी विराधना हो जाती है।

१४ जल निर्मल चाहिए। अगरबत्ती ऊंचे प्रकार की सुगंध युक्त होनी चाहिये। पुष्प खूब सूरत, अखंड, सुगंधमय और विवेक पूर्वक लाये हुए होने चाहिए। धूप उत्तम द्रव्योंसे बना हुआ सुगंधित होना चाहिए, उसमें अगर जरूर होना चाहिए क्योंकि सुगंधित द्रव्यों में वह मुख्य है। दीपक के लिए घृत आदि उत्तम और अपने घर का होना चाहिए। अक्षत, फल, नैवेद्य के लिये तो पहिले लिख चुके हैं, अत पुन लिखने की आवश्यकता नहीं।

१५ चन्दन पूजा के लिये केशर से बरास अधिक होना चाहिए केशर जैसे मनोज्ञ वर्ण और सुगंधि देने वाली है, वैसे बरास शुद्ध शीतलता देता है। प्रत्येक पुष्प दृष्टि से देखना चाहिये। धूप के लिए कोयले जलाने चाहिये। दीपक की बत्ती

नहीं रखना चाहिए, संख्या चाहे कम हो या अधिक पर उत्तम जाति के अच्छे २ फल अर्पण करने चाहिए। इसके बाद नैवद्य स्वरूप मिठाई आदि कोई भी पदार्थ चढ़ाना हो, वह भी उत्तम होना चाहिए। इसके बाद निस्सिही कहकर चैत्यवन्दन करना चाहिए।

१२ चैत्यवन्दन का समावेश भाव पूजा में होनेके कारण द्रव्य पूजा का वर्णन करने के बाद उसका वर्णन करेंगे। द्रव्य पूजा कई प्रकार की है, प्रचलित अष्ट प्रकार की है, जल, चन्दन पुष्प, धूप, दीप, अक्षत, फल और नैवद्य, इन आठों के सम्बन्ध में पृथक् २ विचार करते हैं।

१३ द्रव्य पूजा में शरीर शुद्धि, भूमि शुद्धि, वस्त्र शुद्धि उपकरण शुद्धि और अन्त में भावशुद्धि होनी चाहिए। शरीर और वस्त्र शुद्धि का वर्णन पूर्व में स्नान के प्रसंग पर किया गया है। भूमि जैसे स्नान करने के लिए निर्जीव होनी चाहिए वैसे ही जिन मन्दिर के भीतर की भी शुद्धि होनी चाहिए सब तरफ स्वच्छ की हुई होनी चाहिए। त्रसजीव की विराधना किसी भी जगह नहीं होनी चाहिए। तमाम उपकरण, आरसिया (केशर घिसने का) चन्दन का गुठिया, तश्तरी कटोरी फूल-दानी, धूपदान, मंगलदीपक, कलश, पानी भरने के बड़े बर्तन,

प्रक्षाल करने की कूंडी, न्हवण का पानी झेलने का बर्तन, वाला कूची, अगलूहने, पाटलूहने, मयूरपिच्छी, पाट, चँवर, घटा आदि सबको प्रात समय दृष्टि से देखकर प्रमार्जन करके झटक कर और धातु के तमाम बर्तन पानी से साफ करके फिर काम में लाने चाहिए। इनमें दृष्टि से देखने का लक्ष्य बराबर रखना चाहिए, इसके बिना तो साफ करते समय भी विराधना हो जाती है।

१४ जल निर्मल चाहिए। अगरबत्ती ऊंचे प्रकार की सुगंध युक्त होनी चाहिये। पुष्प खूब सूरत, अखंड, सुगंधमय और विवेक पूर्वक लाये हुए होने चाहिए। धूप उत्तम द्रव्योंसे बना हुआ सुगंधित होना चाहिए, उसमें अगर जरूर होना चाहिए क्योंकि सुगंधित द्रव्यों में वह मुख्य है। दीपक के लिए घृत आदि उत्तम और अपने घर का होना चाहिए। अक्षत, फल, नैवेद्य के लिये तो पहिले लिख चुके हैं, अत पुन लिखने की आवश्यकता नहीं।

१५ चन्दन पूजा के लिये केशर मे बरास अधिक होना चाहिये केशर जैसे मनोज्ञ वर्ण और सुगंधि देने वाली है, वैसे बरास शुद्ध शीतलता देता है। प्रत्येक पुष्प दृष्टि से देखना चाहिये। धूप के लिये कोयले जलाने चाहिये। दीपक की बत्ती

भी अपनी रुई या सूत की होनी चाहिये। बने वहा तक चन्दन पूजा की केशर अपने हाथ से घिसनी चाहिये । यदि ऐसा न हो सके तो पुजारी से भी विवेक पूर्वक मुखकोश बंधवाकर ओरसा, मुठिया बराबर साफ करवाकर निर्मल उत्तम जल से घिसवानी चाहिये।

१६ प्रथम जलपूजा करते समय मयूरपिच्छी बराबर करनी चाहिये । जीवयत्ना बने वैसे अधिक करनी चाहिये। मूलनायक जी के ही पहिले अभिषेक करना चाहिये । उस में जल के साथ में अधिकांश दूध और अल्प दही घृत, शक्कर भी मिलाना चाहिए पंचामृत इन चार पदार्थों का जल में मिलाने से ही बनता है, प्रसंगवश गुलाब जल, तीर्थ जल आदि भी मिलाना चाहिए अभिषेक करने के बाद कपडे के भीगे हुवे पोत से प्रथम दिनकी केशर बिलकुल दूर कर देनी चाहिए, अपने से नहीं निकल सके ऐसी केशर वाला कूची से नम्र हाथ द्वारा निकालनी चाहिए । फिर शुद्ध जल का अभिषेक करके पाटलुहना विवेक पूर्वक करना चाहिए । पाटलुहने का प्रभु के साथ स्पर्श नहीं होना चाहिए फिर सुकोमल, विशाल उज्वल अंगलुहने से दोनों हाथों से प्रभु का शरीर निर्जल करना चाहिए। अंगलुहना किञ्चित् भी फटा हुआ या मैला नहीं होना चाहिए। अंगलुहने तीन करने चाहिए यह किसी भी तरह गीलापन न रहजाय इस लिए है । क्योंकि

जहा गीला रहता है वहा लीलफूल्न आ जाती है। और दूसरे प्रकार की धूल आदि भी शीघ्र जम जाती है।

१७ अगलुहने करने के बाद प्रभु के शरीर पर बरास का विलेपन करना चाहिए पर मुह पर नहीं लगाना चाहिए। फिर केशर मिश्रित चदन से पहिले क्रमानुसार [दाहिने बाए अगुष्ठ, दाहिने बाए घुटने, दाहिने बाए हाथ, दाहिने बाए खभे, मस्तक, ललाट कठ, हृदय और नाभी] नौ अग पूजा करनी चाहिय। पश्चात् विशेष अगी रचाना हो तो सोने चादी के वर्क, बादला, पुष्प चढाने और उन पर विशेष तिलक करने चाहिए।

१८ फूल चढाने में मस्तक पर एक फूल अवश्य चढाना और बने वहा तक शोभनीय माला चढानी चाहिए। बाकी के फूल सुशोभित रीति से चढाने चाहिए, पर फूलों को मरोडना या दबाना नहीं चाहिए। सुई से पिरोए हुए हार भूल चूक से भी नहीं चढाने चाहिए। ऐसे हार चढाने से प्रभु की आज्ञा भग होती है। पुष्प ग्रथीम वेढीम, पूरिम और सघातिम इस तरह चार प्रकार से चढाना कहा है। इन में सिए हुए फूलों का समावेश नहीं होता और इस तरह सुई से सीने में जीवयत्ना नहीं होती, इस के अतिरिक्त और भी कई प्रकार के नुकसान हैं, जो स्थानाभाव से यहा नहीं बतलाये गये।

१९ धूप दीपादि अग्रपूजा सब गर्भगृह से बाहिर ही करना उचित है। हाल में धूपदान, मगल्दीपक और चवर आदि करने के लिए जिनमन्दिर में रक्खे जाते हैं और इसीसे यह पूजा भीतर रहकर कीजाती है, पर इसमें अविवेक अधिक होता है। और धूप की अधिकता के कारण गर्भगृह थोडे ही समय में काला पड जाता है। इस लिए बने वहा तक ये पूजायें जिन मन्दिर से बाहिर निकलकर मुखपोश छोड़कर करनी चाहिए। यदि अन्दर ही करनी पडे तो जैसे बने वैसे प्रभु से दूर रहकर करनी चाहिए। अगरबत्ती लगाइ हो तौ भी मूर्ख के समान हाथ में न रखते हुए धूपदान में रखकर धूप करना चाहिए। दीपक भी इसी तरह दूरसे ही करना चाहिए। दीपक खुला हुआ न रहे यह बात ध्यान में रखने योग्य है। इसका भी विचार रखना चाहिए कि धूपका धुँआ प्रभु पर न जाय।

२० अक्षत फल और नैवेद्य में शक्ति अनुसार अधिकता करनी चाहिए। अक्षतसे नन्दावर्त्त अथवा अष्टमंगलिक करने चाहिए। फलमें प्रतिदिन एक श्रीफल चढाना चाहिए। प्रत्येक ऋतुमें नये आए हुए हरे फल भी अवश्य चढाने चाहिए। प्रभु के एक समय चढाए बिना नवीन फल अपने उपयोग में नहीं लाने चाहिए। नैवेद्य में मिश्री का टुकडा बताशे आदि चढा

कर सन्तोष न करके अपने काम में लावें ऐसी प्रत्येक जाति की मिठाई चढानी चाहिए। पर यह अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि वह झूठे हाथ छुई हुई नहीं होनी चाहिए।

२१ अष्टप्रकारी पूजनमें द्रव्यवृद्धि का भी समावेश होता है। इस लिये नित्य यथाशक्ति द्रव्य चढाना चाहिये। फिर चवर आदि प्रतिहार्यो से पूजा करनी चाहिये। चवर विवेक पूर्वक दूर रहकर करनी चाहिये, चवर ढालते सीखना चाहिये। घटा बजाना आदि इस तरह द्रव्य पूजा का समाप्ति करनी चाहिये।

२२ द्रव्य पूजा में दूसरे बहुत विषयों का समावेश होता है। यहा तो केवल नित्य क्रम का अष्टप्रकारी पूजा की सूचना है। बाकी पर्व तिथियों को और तीर्थो में विशेष रीति से पूजाभक्ति करनी चाहिये। उसम अपना शक्ति पर ध्यान न देते हुये बने वहातक शासन की उन्नति हो, अनेक जीव धम प्राप्त करे, समकित दृढ और निर्मल बने ऐसा करना चाहिये। इसके लिय शास्त्रों में विधिवाद में भी बहुत उल्लेख है और चरितानुवाद भी बहुतसे पुण्यशाली जीवों ने किया है, उससे मालूम करलेना चाहिये। पर इतना खास करके ध्यान में रखना चाहिये कि, द्रव्य पूजा पर किञ्चित भी अनादर या अल्पादर नहीं करना चाहिये, जो ऐसा किया जायगा तो अवश्य भव वृद्धि होगी।

२३ जिनेश्वर की पूजा करते समय भावना क्या भानी चाहिये अथवा प्रभु की कौनसी अवस्था चिन्तवन करनी चाहिये यह अवश्य समझने योग्य है । भगवन्तकी छद्मस्थावस्था ज्ञानावस्था और सिद्धावस्था इस प्रकार तीनों अवस्था चिन्तवन करनी चाहियें। छद्मस्थावस्था में भी गृहस्थावस्था और मुनि अवस्था इस तरह दो प्रकार की हैं । प्रभु को स्नान कराते और पूजा करते समय उनकी बाल्यावस्था और राज्यावस्था का चिन्तवन करना चाहिये । चवरादि प्रतिहार्य संयुक्त देखकर केवली अवस्था और पल्यंकासन या कायोत्सर्ग मुद्रामें देखकर सिद्धावस्था हृदय में चिन्तवन करनी चाहिये । अथवा इन तीनों प्रसगों पर पिंडस्थ, पदस्थ और रूपरहित, ये तीन अवस्थायें चिन्तवन करनी चाहियें । पिंडस्थ को छद्मावस्था, पदस्थ को केवली अवस्था और रूपरहित को सिद्धावस्था समझनी चाहिये । किसी जगह रूपस्थ और रूपातीत ऐसी चार अवस्था भी कहते हैं भगवत की सेवा भक्ति उन उन अवस्थाओं का स्मरण करके उस समय प्रभु की मूर्ति तद्वत् है, यह लक्ष्यमें रखकर करनी चाहिये, जिससे "उस अवस्था के योग्य" भक्ति की गई, ऐसा समझा जासकता है ।

२४ प्रभु पूजा के वस्त्र सर्वत्र दो रखना कहा है । एक पहनने के लिये और दूसरा उत्तरासन । मुखपोश उत्तरासन के

पल्ले से ही बाधा जाता है। वर्तमान में मुखपोश, बराबर अष्ट पुटवाला करके बाधने के लिये जुदा रूमाल रक्खा जाता है, उससे बराबर आठपुट करके मुँह से गध न निकले इस तरह बाधने का ध्यान रखना चाहिये। उत्तरासन एक ही वस्त्र का विना साधे का और दोनों तरफ बराबर पल्ले हों ऐसा रखना चाहिए।

२५ द्रव्य पूजा करने के बाद भावपूजा करने का समय आता है। द्रव्यपूजा अवग्रह में रहकर कीजाती है, क्योंकि इस पूजा का सम्बध प्रभु के अग से है। भावपूजा अवग्रह के बाहिर रहकर की जाती है। अवग्रह का परिमाण शास्त्रकारों ने जघन्य नौ हाथ का और उत्कृष्ट साठ हाथ कायम किया है, परन्तु हालमें मन्दिर के प्रमाण में रख सकते हैं। नौ हाथ का मन्दिर ही न हो तो उतना जघन्य अवग्रह कहा से रखा जा सके, इसलिये यथायोग्य रखना चाहिये। अवग्रह से बाहिर निकल कर तीन खमासमण देकर आदेश मागने के बाद चैत्य-वन्दन करना चाहिय।

२६ चैत्यवन्दन तीन प्रकार से होता है, जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट। जघन्य चैत्यव दन सामान्य नमस्कारात्मक श्लोक आदि कहकर कर सकते हैं, मध्यम चैत्यवन्दन वर्तमान प्रवृत्ति

अनुसार चैत्यवन्दन कहकर नमुत्थुण कहने के बाद स्तवन और जयविराय, और अरिहन्त चेइआण कहना चाहिए फिर काउस्सग करके स्तुति बोलना चाहिय। उत्कृष्ट चैत्यवन्दन आठस्तुति स देववन्दन करते हैं इस को समझना चाहिये कि जिस में पांच शक्रस्तव आवें। बाकी पांच दंडक और बारह अधिकार तो चार स्तुति स दवसी प्रति क्रमण के प्रारम्भ में और राइ प्रति क्रमण क प्रान्त भाग में देववन्दन करते समय भी आ जाते हैं। तीनों वक्त मध्यम चैत्यवन्दन तो अवश्य करना चाहियें।

१७ चैत्यवन्दन, स्तवन और स्तुति, य तीनों प्राय हिंदी भाषा में रचित पद्यमय कहे जात हैं, य शुद्ध कहने चाहिए और इन क अर्थ को पहिले ही समझ रखना व कहते समय उन पर विचार करना चाहिय। इस के साथ जंकिंचि नमुत्थुणं आदि विधिसूत्र आदि मागधी भाषा में हैं ये भी शुद्ध कहने चाहिय। पूर्णोच्चारण करके कहना और उन के अर्थ की धारणा हो सके इस लिय उन क अर्थ पहिले ही से मालूम कर लेना चाहिये। जो अर्थ समझे बिना चैत्यवन्दन करते हैं, वे सही तौर से शुद्ध उच्चारण भी नहीं कर सकते। क्योंकि शुद्ध उच्चारण का आधार अर्थ समझने पर है और अर्थ समझे बिना चैत्य वन्दन करने वाले कितनेक समय अशुद्ध पाठ बोलने से स्तुति के स्थान पर निन्दा करते हैं। जो कि उन की भावना निन्दा

करने की नहीं इस से मानसिक बंध नहीं पड़ता पर वचनाश्रित का अशुभ बंध पड़ता है । चैत्यवन्दन स्तवन और स्तुति जो प्राय हिन्दी भाषा में ही होती है उस का भी अर्थ समझने की बहुत लोग परवाह नहीं करते और जो याद रह गया हो वह बोलते हैं, कि जो सुनते समय अर्थ समझने वाले को उस पर बहुत खेद होता है ।

२८ चैत्यवन्दन या स्तुति कहा कहनी, कौनसा चैत्यवन्दन कौन सा स्तवन या कौनसी स्तुति कहा कहनी योग्य है, यह समझने की भी खास जरूरत है । कितनेक प्रकार के चैत्यवदन स्तवन और स्तुति सर्वत्र कही जा सके और कितनेक प्रकार के अमुक स्थानों पर कहने योग्य ही नहीं किन्तु कितनेक प्रकार के स्त्रियों के कहने योग्य ही हैं, कितनेक पुरुषों के कहने योग्य हैं और कितनेक श्रावक श्राविका के कहने योग्य हैं । सब प्रकार के स्तुति स्तवनादि के अधिकारी निर्विशेषता से सब नहीं हो सकते, इस का विचार स्वयम् करें या इस विषय के जानकार से पूछने पर मालूम हो सकता है । इस के अतिरिक्त लेख द्वारा समग्र वृत्तान्त नहीं कहा जासकता तो भी दृष्टान्त स्वरूप कहा जाता है कि, जो स्तवनादि अमुक स्थल या अमुक तीर्थ के अमुक स्थिति के होवें वहीं पर कहे जासकते हैं । सामान्य स्तुति के हों, वे सर्वत्र कहे जासकते हैं । स्तुति, जो चार होती

है उन में से पहिली दो या तीन मध्यम चैत्यवन्दन के अन्त में कह सकते हैं, चौथी नहीं कही जासकती । और जो स्तवन सौ आगमी कहा हुए सूचना का हो, वह सौ ही कह सकती है जिस में द्रव्य पूज्य का अथवा मा3 मुनिराज के कहने योग्य न हो, ऐसे अधिकार वाले स्तवनादि श्रावक ही कह सकते है साधु साध्वी नहीं कह सकते इस तरह समझना चाहिए। स्तवन परमात्मा की स्तुति के प्रार्थना के गुणानुवाद के आत्मनिन्दा के और परमात्मा के बहुत मानयुक्त होने चाहिए। और य भी भाव गम्भीर अथवाले और पूर्व पुरुषों के किय हुए उत्तम प्रकृति के होने चाहिए। तुच्छ शब्द वाले और नि सार शक्तिवाले अल्पज्ञान वालों के आधुनिक बनाए हुए नहीं कहने चाहिए चत्यवन्दन स्तवनादि मधुर शब्दों से शान्ति पूर्वक कहना चाहिए, पर जैसे पीछ सेना आता हो, उस तरह उतावल के साथ पूर्ण शब्दोच्चार बिना नहीं कहन चाहिए।

२९ द्रव्यपूजा, भावपूजा के कारणभूत होने से, भाव वृद्धि के निमित्त करना है। उसमें शनै शनै इन साधनों से भावों की वृद्धि करके भावपूजा में विशेष २ कालक्षेप करने की आदत डालनी चाहिये, क्यों कि इच्छित फल की प्राप्ति भाव पूजा से ही होती है इतना ध्यान में रखना चाहिए कि माला द्वारा नवकार या आनुपूर्वी गिनने का समावेश भी भाव

पूजा में होता है। भावपूजा करने में इतने तल्लीन हो जाना कि, जिससे भगवान के साथ में तदाकार स्वरूप हो जाय और परमात्मा अथवा अपनी आत्मा कि, जो वास्तव में उस ही स्वरूप वाली है, वह पूर्ण प्रसन्न हो जाय। भावपूजा कर या भार स्वरूप नहीं होनी चाहिए कितनेक तो द्रव्यपूजा करके ही चलते बनते हैं, भावपूजा करते भी नहीं, वे सच्चा कार्य करना तो भूल ही जाते है।

३० चैत्यवन्दन अथवा भावपूजा क्यों करनी चाहिए, इसके निमित्त और हेतु अरिहंत चेइआण में कहे हुए है, वेही समझने चाहिए। वहां जो कि यह हेतु चैत्यवन्दन के प्रान्त में कायोत्सर्ग करने के कारण बताया गया है, पर उसही नि. मित्त का हेतु सामान्य चैत्यवन्दन के आश्रित भी समझना योग्य है।

३१ चैत्यवन्दन के प्रान्त मे एक नवकार का काउस्सग करनें में आता है, वह बराबर शान्ति से और स्थिर रहकर करना चाहिये। इतने समय में एक नवकार जितना चिन्तवन भी जो यथार्थ हो तो प्राणी बहुत कर्मों का क्षय कर डालते हैं

३२ चैत्यवन्दन में अधिक भाग योग मुद्रा में व्यतीत करने का है। जयविराय और दो जावन्ति कहते समय, मुक्ति मुद्रा करना और जयविराय कह कर खडे होने बाद पाव

क आश्रित जिनमुद्रा और हाथ के आश्रित योग मुद्रा करने की है। इन मुद्राओं का स्वरूप किसी जानकार के पास से समझ लेना चाहिए और उसके माफिक मुद्रा अवश्य धारण करनी चाहिये।

यह लेख " जिनराज भक्ति कैसे करनी चाहिए " इस हेतु से संक्षेप से लिखा गया है। यह विषय इतना विशाल है कि, इसके लिए जितना विस्तार किया जाय उतना ही हो सकता है, पर अल्प बुद्धि वालों के ज्ञान में आ सके उतना ही लिखने का लेखक का हेतु है। भक्ति करने की इच्छा हो वहाँ से किसी प्रकार की आसातना * नहीं करने का ध्यान में रखना चाहिए, कारण कि, आसातना भक्ति का नाश करने वाली है। जो मनुष्य भक्ति का शुद्धस्वरूप पहिचान कर विशुद्ध तन, मन, धन से परमात्मा की भक्ति करते हैं, उनका इस और परभव में अवश्य कल्याण होता है। गुणग्राही सज्जन यह लेख पढ़ कर उसका सदुपयोग करेंगे कि जिससे उनका कल्याण होगा। इतना कह कर यह लघुलेख समाप्त किया जाता है। शान्ति, शान्ति, शान्ति।

---

* आसातना ८४ बड़ी आसातना १० वजनी तदुपरान्त पूजा करते समय कलश धूपदान आदि प्रभु के साथ अड़जाय गिर कर टलजाय वह आसातना भी वर्जनी चाहिये।

पद–चाल कव्वाली ।

छोड ससार की माया अरे नादान परदेशी ।
इसी को तू पराई जान रे नादान परदेशी ॥ अचली ॥
पसारा क्यों फलाता है तुझे अकसर तो जाना है ।
एक दो दिन का है महमान रे नादान परदेशी ॥छोड० १॥
जिन्हें तू मानता अपना न तेरे सग जावेंगे ।
चलेगा साथ धर्म ध्यान रे नादान परदेशी ॥छोड० २ ॥
किसी दिन कूच का ढका बजाना ही तुझे होगा ।
ये दुनिया को सरा तू मान रे नादान परदेशी ॥छोड०३॥
न दुनिया में तेरा कोई किसी का तू नहीं प्यारा ।
समझ कर खोज आतम ज्ञान रे नादान परदेशी ॥छोड०४॥
बने वल्लभ तेरा चेतन तिलक सम उन्नति पावे ।
करे जो देव के गुणगान रे नादान परदेशी ॥ छोड० ५ ॥

॥ श्रीपार्श्वनाथ स्तवन ॥

कव्वाली ।

नाम प्रभु पार्श्व जिनवर का मेरे दिल में समाया है ।
हुआ है शान्त चित जिसने कि आकर दर्श पाया है ॥अचली॥
साखी–वामा माता जनमिया, पार्श्वनाथ जिनचन्द ।
अश्वसेन कुल में प्रभु, दिन दिन वृद्धि करन्द ॥

मिलि सुर लोक से अमरा सबो पूजन को आया है ॥नाम १॥

तीस बरस गृहवास में बसिया श्री जिनराय ।
वरसी दान दीया घना, सयम अवसर पाय ॥

लई दीक्षा कठिन तपसे कर्म घाति खपाया है ॥ नामप्रभु० २॥

चौरासी दिन बाद में, पाया केवल ज्ञान ।
इन्द्रादिक ओछव करे, समो सरण मैदान ॥

दई उपदेश हितकारी चतुर्विध संग बनाया है ॥ नामप्रभु० ३॥

दश गणधर प्रभु थापिया, साधु सोल हजार ।
तीन सहस प्रभु के हुए, चौदा पुर्व धार ॥

ज्ञान श्रुत रूप सागर से केवली सम कहाया है ॥नामप्रभु०४॥

दो शत एक हजार है, वादी का परिवार ।
प्रज्ञा से मानो सही, सुरगुरू सम अवधार ॥

वाद कर जैन का झंडा जगत भर में फिराया है ॥नामप्रभु०५॥

दीपाली नक्षत्र में, पाय पद निर्वाण ।
मास खमण के पारणे, साधु तेतिस जाण ॥

भवि को मोक्ष नगरी का सरल रस्त बताया है ॥नामप्रभु०६॥

पार्श्व प्रभु के नाम से, सर्व उपाधि जाय ।
दरशन से भव भय मिटे, पूजन पाप पलाय ॥

तिलक ने आपका दर्शन गुरु वल्लभ से पाया है ॥नामप्रभु ७॥

श्री ऋषभदेव स्तवन ॥

(चाल भजन—क्या गरज रही ससार)

तेरे साचे दरबार में हमने अरजी डाली है ॥ अचली ॥
क्रोधादिक अरिचार कषाया, इन चारों ने मुझे सताया ।
अबतो मेरी करो सहाया, करुणा नजर निहार के ।
नहीं तुझबिन मुझवाली है ॥ हमने० १ ॥
क्या कहू सुन अन्तरजामी, तुम हो सर्व गुणों के धामी ।
कृपा करो हरो मुझ खामी, वामी मोह विकार के ।
तू राग द्वेष खाली है ॥ हमने० २ ॥
पिंजरमें पक्षी घबरावे, त्यों सेवक जग में दुख पावे ।
अबतो दु ख सहा नहीं जावे, हरो दुरित के फन्द को ।
यह दुनिया दुखवाली है ॥ हमने० ॥ ३ ॥
मैं दुखिया दूर निवारो, कर्म सुभट शत्रु को टारो ।
दीनोद्धार बिरुद है थारो, तारो सेवक जानके ।
तुम आज्ञा में पाली है ॥ हमने० ४ ॥
आदि देव आदि जिन राया, आधनत तुमने सुखपाया ।
तिलक तेरे चरणों में आया, वल्लभ सुगुरु पायके ।
जस वाणी मतवाली है ॥ हमने० ५ ॥

— ० —